मंजरी

जयशंकर

हिन्दी ADDA

मंजरी

https://www.hindiadda.com/manjari/

(एक)

मंजरी ने अपने तानपुरे को उसकी जगह पर रख दिया। रियाज में उसका मन नहीं लगा। शाम को उसे एक महफिल में गाना था। इसीलिए वह कबीर के एक भजन को तैयार कर रही थी। इधर यह हुआ है कि मंजरी की अपने गाने में थोड़ी-सी भी दिलचस्पी नहीं बची है। वह यहाँ-वहाँ गाने के लिए जाती भी है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए उसकी रिकार्डिंग्स भी होती रहती है। पर अब उसका मन अपने गाने में डूबता नहीं। एक तरह की आदत-सी बन गई है और वह आवेग से नहीं आदत के कारण गा ही लेती है, थोड़ा-सा ठीकठाक ही गा लेती है।

पैंतालीस की अपनी उम्र में मंजरी को यह चिंता घेरने लगती है कि अगर गाना भी नहीं होगा तो वह अपना बचा हुआ जीवन कैसे अच्छी तरह से बिता सकेगी? दूसरी किसी भी चीज पर न उसने कभी ज्यादा ध्यान ही दिया और न उस पर कुछ काम ही किया। जैसे-तैसे एक लड़के को पाल-पोसकर बड़ा किया और अब वह भी बंगलोर में पढ़ रहा है। उसके पति डॉक्टर हैं और उनकी अपनी तरह की जिंदगी है, व्यस्तताएँ हैं। कभी उनकी सास साथ में रहा करती थी और अब वह भी अपने दूसरे बेटे के पास चली गई है।

सर्दियों की एक सुबह में आधी-अधूरी रियाज के बाद मंजरी अपने बचपन, प्रेम, विवाह, गृहस्थी और नौकरी से होती हुई इन दिनों के अपने अजीब से अवसाद पर लौट रही है। कहीं यह एक किस्म का वैराग्य तो नहीं है? अपने कमरे से, अपने बाग में खड़े हुए अमलतास के पेड़ को देखते हुए मंजरी को अपनी कई-कई भूलों का, तरह-तरह के भटकावों का भी ख्याल आ रहा है।

मंजरी इतना जरूर महसूस कर रही है कि उसके अपने गाने का उसे अच्छा न लगना, उसका अपना सच्चा एहसास है और एक ऐसी बात, जिसमें न कोई भूल है और न ही कोई भटकाव।

(दो)

मंजरी को शास्त्रीय गायन से जुड़े अपने पिता का ख्याल आता है। उनका समूचा जीवन गाने को समर्पित रहा। अपने अत्यधिक आत्मस्वाभिमान और अक्खड़पन की वजह से उन्होंने लोगों के बीच बहुत कम ही गाया। अपनी साधना करते रहे। मंजरी को सिखाते रहे। मंजरी को वैनगंगा नदी के किनारे बसा अपना वह घर याद आता है, जहाँ उसने हिंदुस्तानी क्लासिकल गाना सीखना शुरू किया था। बहती नदी पर उतरती

सुबह और पिता के गाने के स्वरों के साथ-साथ मंजरी यह भी याद करती है कि उसका मन गाने में नहीं होता था। वह हसरत भरी निगाहों से नदी के किनारे के पेड़ों पर झूलती हुई अपनी सखियों को देखती रहती थी। तब उसका मन सर्कस, सिनेमा, रामलीला और आल्हा गाने वाले बूढ़े बाबाजी के आसपास भटकता रहता था।

गाने पर ही ध्यान न देने, अपने कम समर्पित होने, आइस्क्रीम और कुल्फी के लिए अपनी चाहत जताने के लिए, वह अपने पिता की डाँट और गुस्से को सहती रहती। वह गजल गाने की भी आकांक्षा लिए हुए रहती और उसके पिता उसे मना करते। उनकी निगाह में गजल का कलात्मक महत्व कुछ कम था।

फिर मंजरी का अपने ही शहर के एक फिजिशियन से विवाह हुआ। शादी के कुछ ही बरसों के बाद अपना गाना, उसके अपने जीने का बड़ा सहारा जान पड़ा। पति के पास न वक्त था और न वह मन जो मंजरी को समझ पाता। अब पिता नहीं रहे और न ही माँ। गाना ही सब कुछ बनता गया। एक बेटा हुआ और उसका पालन-पोषण भी उसकी विधवा और निःसंतान बुआ ने ही किया।

इस सबके बावजूद मंजरी को ऐसा वक्त याद ही नहीं आता है जब उसे अपने गाने से आनंद मिला हो, उसने मन से, डूबकर गाना गाया हो। वह अब भी वैनगंगा के किनारे खड़ी हुई वह किशोरी ही है जिसकी अपने गाने में जरा-सी भी रुचि नहीं है, जिसका मन स्वरों, रागों और तानों में नहीं, पेड़ों पर चहचहाते परिंदों में, उनकी शाखाओं पर लटकते रस्सी के झूलों में, नदी की कलकल और वहाँ से आती हवाओं में रमता है।

मंजरी अब भी गाती है, कुछ ठीकठाक ही गाती है; पर अपने लिए नहीं, अपने मन से भी नहीं।

(तीन)

वह मालवा की बसंत के दिनों की रात थी। मंजरी राग केदार को गा रही थी। एक तो नई जगह के नए संगतकार थे और दूसरे ट्रेन सुबह की जगह, दुपहर में पहुँची थी। वैसे भी मंजरी ने गायन की कोई विधिवत शिक्षा नहीं ली थी। जो कुछ थोड़ा-सा सीखा, वह अपने पिता से, जो खुद कभी गा न सके थे पर यह चाहते रहे थे कि उनकी इकलौती बेटी जरूर गाए।

मालवा के इस इलाके में वह गाने के लिए आती रही थी। इस इलाके से कभी अमीर खान और कुमार गंधर्व के जुड़े होने का ख्याल उसके साथ बना रहता था। किसी कंसर्ट

के दौरान ही वह इस इलाके में आई थी और उसने अपनी एक दुपहर कुमार गंधर्व के साथ बिताई थी। वह दुपहर मंजरी के अपने पैंतालीस साल के जीवन की एक आत्मीय दुपहर रही। इतनी उम्र में भी ऐसा कितना कम ही वक्त होता है जो याद रह जाता है, जिसकी याद तसल्ली देती है। तमन्ना भी।

उसने गाना खत्म किया और कुछ लोगों ने आकर उसके गाने की प्रशंसा भी की; पर वह जान रही थी कि उसने कहाँ-कहाँ भूल की थी, कहाँ-कहाँ पर उसके गाने की साँसें अटकी थीं, वह गाना नहीं रहा था, उसके साथ लापरवाही से गाने की शर्म थी और वह स्कूली बच्चों के लिए अपने ऑटोग्राफ दे रही थी। मंजरी के मन में अपने लिए भी दया जागी और उन बच्चों के लिए भी जो गाना जानते नहीं थे; पर इसके साथ ही मंजरी के मन में यह सवाल भी जागा कि क्या वह गाना जानती है?

(चार)

मंजरी को अपने गाने में किसी चीज का बड़ा-सा, गहरा-सा अभाव नजर आता है। कुछ अत्यंत अनिवार्य-सा है, जो उसे अपने गाने में हमेशा से ही गायब नजर आता रहा है। वह उस अभाव को महसूस तो करती रही है, लेकिन उसको नाम दे पाना, परिभाषित कर पाना, उसके लिए कभी संभव नहीं हो पाया। जब कभी वह हिंदुस्तानी क्लासिकल गायन के उस्तादों को सुनती है तब उसे अपने गाने की वह कमजोरी, अपने गाने में रची-बसी वह कमी सताने लगती है।

अवसाद के अपने ऐसे क्षणों में उसे अपने उस समकालीन गायक का भी ख्याल आने लगता ह जो पिछले कुछ बरसों से मंदिरों में, आश्रमों में ही गाना गाता रहा है। वह एक जगह से दूसरी जगह, एक मंदिर से किसी दूसरे मंदिर की यात्राएँ करता रहता है। संन्यासियों की तरह बहुत कम जरूरतों के साथ अपना जीवन गुजारता है और गाने को, सिर्फ गाने को अपने जीवन के केंद्र में रखता है।

तब वह यह भी सोचती है कि वही सचमुच में गाता है, अपने लिए गाता है, गाने के अलावा किसी भी दूसरी चीज या बात पर अपना ध्यान नहीं बँटाता है। इस तरह का वैराग्य ही किसी को सच्चा कलाकार बनाता है पर मंजरी को ऐसे वैराग्य से जुड़ी वीरागनी, गरीबी और पागलपन का भी ध्यान आता है।

फिर मंजरी को चित्रकार वैनगॉग के जीवन की दयनीयता, गरीबी, अपमान और परिणति का भी ख्याल आता है। क्या दुनिया उसे पागल ही नहीं समझती रही, क्या दुनिया ने उसे पागल बनाकर ही नहीं छोड़ा था?

(पाँच)

अब मंजरी जिस जगह रह रही है, वह एक बड़ा-सा और नया बँगला है। कभी यहीं पर डॉक्टर ही रह चुके उसके ससुर का घर भी था और दवाखाना भी। अब यह सिर्फ घर है और उसके पति का क्लिनिक दूसरी जगह पर है। इस बँगले को पुराने पेड़ों और नए-नए बाग ने घेर रखा है। यहाँ के कंपाउंड में विदेशी नस्ल का युवा कुत्ता और बूढ़ा होता हुआ चौकीदार नजर आता रहता है। डॉक्टर के क्लीनिक चले जाने के बाद बँगले के बाहर कुत्ता और चौकीदार रह जाते हैं और बँगले के भीतर मंजरी और यशोदाबाई।

मंजरी जब अपने ससुराल में पहली बार आई थी तब यशोदाबाई अधेड़ उम्र की, महाराष्ट्रियन वेशभूषा में नजर आती सुंदर औरत थी। इस घर में बरसों से काम करती आई थी। मकान के पिछले हिस्से में अपने परिवार के साथ रहती थी। अब वह विधवा है, बूढ़ी हो रही है, और अपना ज्यादातर वक्त मंजरी के यहाँ बिताती है।

मंजरी को उसके साथ रहना, उससे बतियाना, कभी-कभार उसे अपना गाना सुनाना, किसी किताब के किसी-किसी रोचक अंश को उसे पढ़कर बताना, अच्छा लगता रहा है। मंजरी के लिए यशोदाबाई एक सीधी-सादी सरल-सी और विवेकशील औरत है। उसे पता होता है कि क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं। कब बोलना चाहिए और कहाँ चुप रहना चाहिए। उसमें न उसके पति की तरह की जटिलता बसती है और न उनकी तरह का छिछोरापन।

मंजरी को महसूस होता रहा है कि यशोदाबाई इस बात को समझती रही है कि किसी को प्रेम करने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है, बहुत कुछ सहना पड़ता है। वह जानती है कि प्रेम करना, एक तरह का काम ही है, एक प्रकार का परिश्रम। प्रेम में कठिन परीक्षा भी होती है और बहुत-सी परेशानियाँ भी।

इस वक्त मंजरी तानपुरा लिए हुए रियाज कर रही है और यशोदाबाई चटाई पर बैठे हुए गाना भी सुन रही है और कुछ बुन भी रही है। मंजरी के गाने में मीरा का कोई भजन है और यशोदाबाई के मन में मीरा का भक्तिभाव!

(छः)

कभी-कभी मंजरी के मन में यह बात भी उतरती है कि उसने गाने को नहीं, सारंगी को खुद को व्यक्त करने का माध्यम बनाना था। सारंगी के स्वर उसे अपने एकदम करीब के स्वर जान पड़ते हैं। वह कहीं भी, कभी भी, किसी की भी सारंगी को सुनती है और

उसे महसूस होता है कि उसके किशोर जीवन के मकान के उसके पड़ोस का कोई उसे पुकार रहा है। वह चाँदनी रात के वक्त का कोई हिस्सा है। पड़ोस में ही वैनगंगा नदी बह रही है। एक किशोर उसके मकान के सामने की फेंस के पास खड़ा हुआ मंजरी... मंजरी... पुकार रहा है।

मंजरी की आत्मा में सारंगी का स्वर उतरते ही उसे बनारस के घाट, नदी के किनारे खड़ी सीढ़ियाँ और सुबह-सुबह किसी गुंबद पर बैठे हुए कबूतरों का ख्याल आता है। वह एकदम सुबह के समय, सीढ़ियों पर बैठी हुई किसी की सारंगी सुनती रहती है, किसी को सारंगी बजाते हुए देखती रहती है। उसकी याद में सारंगी बजती रहती है, गंगा बहती रहती है और बनारस के घाट पर एक और सुबह की शुरुआत होती रहती है।

मंजरी ने आज तक बनारस नहीं देखा। बनारस की कुछ तस्वीरें जरूर देखी हैं। बचपन में जब अपनी नानी से शिव-पार्वती और गंगा के किस्से सुना करती थीं तब उनमें काशी का भी जिक्र हुआ करता था। उसने दो-तीन बार बनारस जाने, वहाँ कुछ दिन गुजारने का मन बनाया। पर वह बनारस जा न सकी। यह वह शहर है जिसे उसने पकड़ना चाहा, पर वह छूटता ही चला गया।

मंजरी के लिए सारंगी भी, बनारस की ही तरह एक छूटा हुआ नगर है। कभी-कभी, जब कभी मंजरी को सारंगी के छूट जाने, बनारस के पकड़ में आने का रंज सताता है तब उसे उसके जीवन की एक और छूटी हुई बात का ध्यान आता है। वह गंगा के किनारे नहीं, वैनगंगा के किनारे के अपने मकान की खिड़की के पास खड़ी रहती है और उसके मकान के सामने की फेंस के पास वह किशोर, जो मंजरी का पहला प्रेम था, जिसने पहली बार उसे अपने होने, अपने स्त्री होने का अहसास दिलाया था।

(सात)

मंजरी यह निरंतर महसूस करती रहती है कि वह पच्चीस बरसों से गा जरूर रही है पर उसके अपने गाने में आज भी कुछ अप्रत्याशित-सा कुछ आत्मीय-सा उपस्थित नहीं रहता है। वह अपने गाने में एक तरह की गहराई का और इस तरह से एक किस्म की सच्चाई का अभाव महसूस करती रहती है। वह अपने गाने में कोई ठोस तत्व को पाने का, कुछ गहरा कर गुजरने का प्रयत्न करती रहती है। इसका स्वप्न देखती रहती है।

जब कभी अमीर खान का राग दरबारी सुनती है, अमीर खान के गाने के बनते-बिगड़ते आकारों को महसूस करती है। आकार से निराकार की तरफ बढ़ती उनकी आवाज पर

ठहरती है तब अपना अब तक गाना, मंजरी के लिए निरर्थक, असहनीय और फूहड़ हो जाता है।

वह अपनी बाल्कनी पर आती है। पेड़ों की सरसराहटों और वहाँ से गुजरती हवाओं को सुनती है। गुजरती हुई जिंदगी, छूटती हुई उम्र, बहते हुए काल के अहसासों के साथ यह ख्याल भी उतरता है कि उसने इतनी उम्र में कुछ भी नहीं किया, थोड़ा-सा भी नहीं जिया। खुद को लेकर भ्रमों से घिरी रही। गाने से जुड़ी रही, लेकिन गाने के इलाके में ही ऐसा जरा-सा भी नहीं किया जिसका कोई महत्व रहा हो। क्या कलाकार का जीवन ऐसी वीरानगी का शिकार होता ही है? क्या कला अंततः कलाकार को अकेलापन ही सौंपती है।

मंजरी अपनी बाल्कनी से डूबते हुए सूरज को देखती है और बरबस ही उसकी आँखें डबडबाने लगती है। माँ की याद आती है। उनके आखिरी वक्त की याद जब वह माँ को शाम की सैर के लिए ले जाती थी। माँ भी डूबती शाम के आईने में अपनी डूबती जिंदगी को देखने लगती थी।

वह सर्दियों की उदास शामें हुआ करती थीं। तब तक मंजरी ने न प्रेम को जाना था और न ही अकेलेपन को। वह कोई दूसरा वक्त हुआ करता था और वह कोई दूसरी मंजरी।

(आठ)

इधर मंजरी रोज ही सुबह की अपनी सैर पर निकलती है। सुबह की सैर में उसे कुछ ज्यादा ही शुरू होता हुआ जान पड़ता है। बाहर निकलने पर चेहरे नए होते हैं, उनकी उम्र अलग-अलग होती है और चलने और बोलने का ढंग भी अलग-अलग। मंजरी को लगता है कि घर के बाहर कितना कुछ घटता रहता है और घर के भीतर कितना कम, अगर कम नहीं भी तो कितना एकरस, खुद को दोहराता हुआ, बोरियत लिया हुआ बेढंगापन।

सैर के वक्त उसका अलग-अलग चेहरों से वास्ता पड़ता है और अलग-अलग आवाजों से। हर कोई अपने ढंग से बोलता है। हर कोई अपनी शैली में चलता है। हर पेड़ का सरसराना अलग होता है और हर पंछी का चहचहाना। सुबह के रंग उभरते रहते हैं। धीरे-धीरे जहाँ छाया और अँधेरा खड़ा था वहाँ धूप और उजाला खड़े होने लगता है। आसमान का रंग बदलता है और इसी तरह पेड़ों की पत्तियों का, ग्रीनपार्क के आसपास के लैंडस्केप का। वह अशोक के पेड़ के नीचे की बेंच पर बैठे हुए यह सब देखती रहती

है। उसे लगता है कि निसर्ग खुद को कितना ज्यादा, कितनी बार सँवारता हुआ चलता रहता है और आदमी?

अपनी सुबह की सैर के वक्त में ही कभी-कभी मंजरी के मन में आता है कि क्या वह भी किसी दिन गाते-गाते, अपनी ही, सिर्फ अपनी ही आवाज को खोज सकेगी? क्या इस जन्म में उसका गाना, सिर्फ उसका ही गाना, अपनी तरह का गाना बन सकेगा? वह सुबह की सड़क पर चलती रहती है, अपने स्वप्न की पगडंडी पर बढ़ती रहती है। उसने हमेशा ही सोचा है। उसे सोचना अच्छा लगता है। मंजरी को सोचते हुए जीना अच्छा लगता है। शायद इसीलिए भी वह दुख में डूब जाती है और अपने दुख में भी भीग जाती है।

(नौ)

इस बरस का मानसून केरल में अरब सागर के कन्नामलाई तट तक पहुँच चुका है।

मंजरी सुबह-सुबह अपने घर की बाल्कनी में रखी गई आरामकुर्सी पर बैठ जाती है। यह कुर्सी उसके पिता की है। उनके न रहने पर वह उनकी कुर्सी, उनका हारमोनियम और चश्मा अपने साथ यहाँ ले आई थी। मंजरी के पिता की लिखी कुछ चिट्ठियाँ और उनका चश्मा, बैंक के लॉकर में रखा गया है।

बाल्कनी से उसे अमलतास का हिलना-डुलना नजर आता है और वहीं से उसकी सरसराहटें भी सुनाई देती हैं और उस पर उतरते-चढ़ते परिंदों की चहचहाहटें भी। वह सोचती है कि उसके जीवन की एक और बारिश शुरू होने को है। उसने कितनी-कितनी बारिशें देखी हैं। वह और कितनी बारिशें देख सकेगी? इतनी सारी बारिशों से गुजरे हुए उसके जीवन ने कितना-कुछ देखा है, कितना कुछ सहा है।

तब क्या इस सृष्टि में एक ही आदमी के साथ इतना कुछ घटता चला जाता है**?**

हर बरस मानसून इसी तरह आने लगता है। पेड़ों से हवाएँ गुजरती हैं। आसमान पर बादल छाने लगते हैं। कहीं दूर बादल गरजते हैं। शायद प्रकृति अपने मूल में बिल्कुल भी नहीं बदलती है और आदमी इतना ज्यादा बदल जाता है! पर मंजरी जब इस दिशा में सोचना शुरू करती है तो उसे लगता है कि आदमी जरासा भी नहीं बदलता है। कितने ही लोग आदमी को बदलने के कितने ही प्रयत्न करते रहे हैं, लेकिन ऐसा शायद ही कोई संत होगा, शायद ही कोई मसीहा या सुधारक जो एक रात भी इस तसल्ली के साथ सोया होगा कि आदमी बदल रहा है, आदमी बदल गया है।

अमलतास सरसराता है और मंजरी को महसूस होता है कि जीवन इस तरह बीतता चला जाता है, काल इस तरह गुजरता आता है। धीरे-धीरे हर कोई मृत्यु की तरफ, अंत की तरफ बढ़ता जाता है।

(दस)

मंजरी सुबह-शाम अपनी बाल्कनी में रखी हुई आरामकुर्सी पर बैठती ही है। उसे इस तरह किसी एक जगह पर कुछ देर तक बैठना, कुछ भी नहीं करना, सिर्फ होना, सिर्फ सोचना, पिछले कुछ दिनों से अच्छा लगता रहा है। शायद उस दिन से जब उसने बचपन से साथ बनी रही अपनी सखी को, पैंतीस साल से भी ज्यादा बनी रही अपनी सहेली को पहले साल भर कैंसर से जूझते हुए और अंततः उससे मरते हुए देखा है।

उसे लगता है कि आदमी के बाद उसका कुछ नहीं रहता है। उसके बाद और उसकी अनुपस्थिति में भी उसकी खिड़की पर धूप के धब्बे उतरते हैं, उसके पड़ोस का गुलमोहर दहकता है, उसके मकान की रसोई से पकते हुए गोश्त की गंध आती है, उसके घर का ट्यूबलाइट जलता है और उसकी दीवार पर टँगा कैलेंडर हवा से फड़फड़ाता रहता है।

किसी दुपहर को कैंसर की अथाह यातना से टूटी उसकी देह से आखिरी साँस निकलती है। उसके शव को जमीन पर रख दिया जाता है। उसके सिरहाने दीया जलता रहता है। लोग उसके शव के पास आते रहते हैं। कोई रोता है, कोई किसी को रोने से रोकता है। कोई तसल्ली चाहता है, कोई तसल्ली देता है। फिर उसकी अरथी को बनाते हैं। उसकी अरथी को फूलों से सजाते हैं। और उसका शव, शवयात्रा में, उन गलियों और चौराहों से श्मशान की तरफ बढ़ता है जहाँ कभी वह अपने दोस्तों के साथ बतियाता रहता था। जहाँ खड़े-खड़े उसने अपने जीवन में अनेक सिगरेटों को फूँका था। फिर श्मशान में, कुछ दूसरी जलती-बुझती चिताओं के आसपास उसके शव को भी जलाया जाता है। किसी पेड़ के नीचे एकत्र लोग उसको याद करते हैं। कोई किसी उपनिषद के संस्कृत में रचे गए श्लोकों का पाठ करता है। फिर हर कोई उसे श्मशान के एक हिस्से में अकेला छोड़कर, अपने-अपने घरों की तरफ निकल पड़ते हैं। सिर्फ वही, वह मृतक ही बेघर हो जाता है। उसका कोई घर नहीं बचता है। अब उसे यहाँ वहाँ भटकना होगा।

अपनी मौत के बाद, हर कोई भटकता है, हर कोई बेघर हो जाता है। जहाँ कभी वह रहा करता था, वहाँ उसकी चीजें होती हैं और वे लोग, जिनके साथ उसने अपना अच्छा-बुरा जीवन बिताया था। कहीं-कहीं और कभी-कभी, मृतक के घर की किसी दीवार पर उसकी काली-सफेद तस्वीर को टाँग दिया जाता है। उस तस्वीर को देखकर

कभी उसका होना याद आता है। वह अपनी तस्वीर से कभी अपने होने और अब अपने न होने को देखता रहता है।

पेड़ सरसराते हैं। परिंदे चहचहाते हैं। सुबह होती है। शाम होती है। जीवन अपनी और सिर्फ अपनी गति से आगे बढ़ता रहता है। आदमी के बाद कुछ नहीं रह जाता। अगर उसकी माँ हो तो वह कुछ दिनों तक उसे याद करती रहती है, उसके बारे में बात करती रहती है। मंजरी को यह सब अजीब-सा लगता है। अजीब-सा नहीं भी लगता है।

(ग्यारह)

वह दुपहर में गुजर गया। मंजरी शाम को उसके घर गई और तब तक उसके शव के आसपास, नीचे के उनके आँगन में काफी लोग जमा हो गए थे। उस युवा मृतक के सिरहाने पर उसकी युवा विधवा बैठी हुई थी। वहीं मिट्टी का दीया जल रहा था। यह आदमी मंजरी के संगतकारों में से एक था। कंसर्ट में मंजरी के गायन के वक्त हारमोनियम पर बैठता था। पिछले ही बरस, जब मंजरी का बासर में कंसर्ट होना था, वह आदमी कैंसर का शिकार हो गया। साल भर तक इसकी देह कैंसर से लड़ती रही, कैंसर से थकती रही।

शाम के अंतिम उजाले में उसकी शवयात्रा निकली। मृतक के आगे-पीछे बढ़ते हुए जीवित लोग। लौटते हुए परिंदे। डूबती हुई शाम। अपने-अपने दरवाजों पर खड़े हुए उसके आस-पड़ोस के लोग। इस सँकरी सड़क से वह आखरी बार गुजर रहा है। कभी इस सड़क से वह रोज ही गुजरता था। यहीं से वह सिगरेट खरीदने के लिए गुमटी तक जाया करता था। यहीं से अपनी बिटिया को स्कूल छोड़ने के लिए या अपनी चिट्ठियों को लेटर-बॉक्स में डालने के लिए। उसके माता-पिता भुवनेश्वर में रह रहे थे। पहली बार मंजरी ने केलुचरण महापात्र के नृत्य के बारे में इस आदमी को ही गहरे उत्साह से बताते हुए सुना था। कभी यह आदमी केलुचरण महापात्र के पैर छू चुका था। 'तो आदमी इस तरह जाता है' - मंजरी ने घर लौटते हुए ये शब्द दुहराए। उसके ऊपर सर्दियों का आकाश था। आकाश बना हुआ है और वह आदमी नहीं है जो कभी उसके साथ बैठा करता था, बतियाता रहता था, यात्राएँ किया करता था। 'क्या आदमी के न रहने पर, उसका कुछ भी नहीं रह जाता है' यह इस सवाल के साथ मंजरी अपने घर में लौट रही थी।

(बारह)

'देवता बूढ़े हो चुके हैं' कहाँ पढ़ा था मंजरी ने इस वाक्य को? मृतक के घर से लौटने के बाद, मंजरी ने स्नान किया था। अपने लिए कॉफी बनाई थी और बाद में कुमार गंधर्व का गाया हुआ कबीर का कोई भजन सुन रही थी। भजन सुनते-सुनते पता नहीं कहाँ से उसके मन में ईश्वर के थक जाने, उसके बूढ़े हो जाने के बारे में कहीं और कभी कुछ पढ़े जाने का ख्याल आया और उसने अपना प्लेयर बंद कर दिया।

मंजरी अपने पिता की शवयात्रा में शामिल हुई थी। वह उनकी चिता जलने तक श्मशान में रही। उसे याद है कि अंतिम संस्कार के बाद पिता के ही एक मित्र ने उपनिषद के कुछ संस्कृत श्लोकों को दुहराया था। वे मृत्यु को लेकर हमारे पुरखों का चिंतन था। दुनिया में मृत्यु कितनी पुरानी, कितनी बूढ़ी है और उस पर कितने-कितने बरसो से सोचा जा रहा है। आदमी मरता ही है। आदमी सोचता भी है। वह मरने के बारे में सोचता चला आ रहा है।

मंजरी के मन में अपनी मृत्यु का ख्याल उभरने लगा। शायद अपनी ही उम्र के किसी आदमी का न रह जाना, हमें अपने भी जाने का ख्याल देने लगता है। मंजरी के मन में यह लालसा भी जागी कि कितना अच्छा रहेगा अगर वह बसंत के दिनों में अपनी आखरी साँस ले सके। तब पेड़ कितने ज्यादा जीवित होंगे, कितने ज्यादा जीवंत। वह पेड़ों को सुनते हुए, पेड़ों से बतियाते हुए इस दुनिया को छोड़ना चाहेगी। यह दुनिया, जो मंजरी को कभी न बहुत अच्छी लगी और न बहुत बुरी। इस दुनिया ने मंजरी को कभी बहुत ज्यादा सम्मोहित भी किया और कभी बहुत ज्यादा विचलित भी।

मंजरी अपनी बाल्कनी में खड़े हुए, अपने जीवन के बारे में, इस दुनिया को लेकर सोच रही थी और आकाश में ध्रुवतारा नजर आने लगा था।

https://www.hindiadda.com/manjari/